

आंबेडकरवादी चेतना का काव्यात्मक रूप : दामोदर मोरे का अध्ययन

- डॉ० तात्याराव सूर्यवंशी

शोध सारांश -

प्रस्तुत आलेख में दामोदर मोरे की कविताओं में निहित आंबेडकरवादी दृष्टि का विश्लेषण किया गया है। मोरे की काव्य-दृष्टि सामाजिक यथार्थ से सीधे टकराती है और जाति, वर्ण, मनुवाद, धार्मिक पाखंड तथा सांस्कृतिक वर्चस्ववाद के विरुद्ध वैचारिक प्रतिरोध का स्वर प्रस्तुत करती है। उनकी कविताएँ केवल करुणा या पीड़ा का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि परिवर्तन की सक्रिय चेतना को जगाती हैं।

कवि ने सामाजिक विषमता, अस्पृश्यता, श्रम-अपमान, शब्दों की अर्थहीनता, संवैधानिक मूल्यों के अवमूल्यन तथा आज़ादी के अधूरे स्वप्न जैसे प्रश्नों को अपने काव्य का केंद्र बनाया है। उनकी रचनाओं में डॉ. भीमराव आंबेडकर की समतामूलक विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। मोरे के यहाँ 'आंबेडकर' केवल एक व्यक्तित्व नहीं, बल्कि बंजर भूमि की धड़कन, सदियों के दर्द की रोशनी और मनुवाद-विरोधी अग्नि के रूप में उभरता है।

कवि सामाजिक संरचना के मिथ्या आदर्शों को विखंडित करते हुए शब्द, धर्म, इतिहास और सत्ता के गठजोड़ को बेनकाब करता है। वह दलित अनुभव को करुण आख्यान तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे आंबेडकरवादी वैचारिक क्रांति में रूपांतरित करता है। इस प्रकार मोरे की कविता संघर्ष, आत्मसम्मान, समता और मानव-मुक्ति की वैचारिक परियोजना का काव्यात्मक रूप है।

बीज शब्द

आंबेडकरवाद, दामोदर मोरे, समता, मनुवाद-विरोध, सामाजिक न्याय, जाति-विमर्श, बहुजन चेतना, प्रतिरोध-काव्य, संवैधानिक मूल्य, मानव-मुक्ति।

मूल लेख

दामोदर मोरे की कविताओं में विवेचित आंबेडकरवादी संवेदना से मराठी, अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य को मजबूती मिली है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के विचारों, आंदोलनों से प्रभावित दामोदर मोरे क्रांति और परिवर्तन के पक्षधर रहे हैं। भारत में आज भी बहुजन समाज, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी के चलते

आर्थिक दृष्टि से कमजोर पड़ रहा है। दूसरी तरफ सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में असमानताएं, शोषण, भ्रष्टाचार से लिप्त व्यवस्था मूल्यहीन की दिशा में बढ़ रही है। इन समस्याओं को अपनी चिंता का विषय बनाते हुए अपने समकाल को आंबेडकरवादी संवेदना से रूबरू कराते हैं। दामोदर मोरे सन 1972 से अपने लेखन द्वारा, साहित्यिक मंचों से आंबेडकरवादी विचार स्थापित करने के लिए प्रयासरत रहे हैं। 'नीले शब्दों की छाया में' काव्य संकलन के प्रस्तावना में लिखा है- सामाजिक उत्पीड़न, वेदना एवं आंदोलन की संवेदना को नजरअंदाज करने वाले भगोड़े और स्वार्थी रचनाकार को मैं कवि नहीं मानता, मैं तो उस आंबेडकरवादी कविता को चाहता हूँ जिसमें संघर्ष का संगीत हो, जिसमें स्वतंत्रता की रणभेरी बजती हो, समता का गगन भेदी जयघोष सुनाई देता हो, जिसमें भ्रातृत्व का भाव बहता हो, जो सांप्रदायिक दाहकता को ठंडा करता हो, आदमी को आदमी बनाने का सबक सिखाता हो, आंबेडकरवादी साहित्यकार समय का प्रहरी होता है। यह सर्वविदित है कि समय के सबसे अधिक सबसे तेज और निर्मम थपेड़े उस तबके को लगते हैं जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में सबसे अधिक अनावश्यक और उपेक्षित हैं। अतः यह बेहद जरूरी हो जाता है कि डॉ. आंबेडकर ने भारत के बहुजन समाज को संवैधानिक आधार पर समानता, एकता तो दिलाई परंतु सामाजिक स्तर पर आज भी मनुवाद के चलते आजादी के 67 वर्ष बाद भी समाज ज्यों का त्यों मनुवाद पर चल रहा है। समय आ गया है। दलितों में से दलितत्व निकालकर पाक मन से आंबेडकरी विचार अपनाकर

हम उस हीन रहने वाले पद को त्याग दें। अब मैं साहित्य में बौद्ध की ध्वजा फहरा रहा हूँ क्योंकि अब मैं दलित नहीं बौद्ध हूँ। दलित के लिए मेरे मन में प्रेम है, मगर दलितत्व से मैं नफरत करता हूँ। दलितत्व से ऊपर उठाकर उनको मनुष्यत्व के पद पर ससम्मान प्रतिष्ठित करना मेरा उद्देश्य है। (1)

पिछले दो दशकों से हिन्दी दलित साहित्य में वैचारिक परिवर्तन देखने में आया है। जो सार्थक वैज्ञानिक आधार पर आधारित है। इसकी जड़ें आंबेडकरवादी विचार धारा में समाहित हैं। हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य की जगह आंबेडकरवादी साहित्य की स्थापना का श्रेय डॉ. सिंह को जाता है। वे समझते हैं कि दलित साहित्य के नामकरण को जाति की परिधि में बांधा हुआ है। जिस जाति व्यवस्था को तोड़ने के लिए गौतम बुद्ध से लेकर कबीर, रैदास, फुले और डॉ. आंबेडकर आदि ने ताउम्र संघर्ष किया। उसे बदलने के लिए वैज्ञानिक, ऐतिहासिक पद्धति को अपनाया, परंतु हिन्दी दलित साहित्यकारों ने डॉ. आंबेडकर के जातिविहीन समतामूलक समाज बनाने के सपने को जातिवादी समाज का साहित्य निर्माण करने में लगा हुआ है।

आंबेडकरवादी साहित्य की अवधारणा को विस्तार देते हुए डॉ. तेज सिंह जी ने चर्चा को दिशा दी है। हिन्दी के तथाकथित दलित साहित्यकारों ने डॉ. आंबेडकर के विचारों को सतही तौर पर अपनाया है, लेकिन उन्हें एक निश्चित धारणा के तहत विचारधारा में नहीं बदला। यही वजह है कि उनमें डॉ. आंबेडकर के जाति संबंधी विचार तो मिल जाते हैं लेकिन आंबेडकरवादी संचेतना के दर्शन नहीं होते और न ही आंबेडकरवादी विचारधारा दिखाई देती है। इसलिए डॉ. तेज सिंह दलित-साहित्य की जगह आंबेडकरवादी साहित्य नामकरण को तरजीह देते हैं। उन्हीं के शब्दों में यही वजह है कि दलित साहित्य के जातिवादी स्वरूप को देखते हुए मैंने पहली बार उसके स्थान पर आंबेडकरवादी साहित्य की अवधारणा प्रस्तुत की है।

पिछले दशक में विद्वानों, रचनाकारों की चेतना सामाजिक, राजनीतिक प्रतिक्रिया के संबंध में तीव्र होती चली है। साहित्यकार, बुद्धिजीवी डॉ. आंबेडकर के वैचारिक अवधारणा को तीव्र बनाने के लिए दलित साहित्य, दलित-विचार, दलित-लेखन के बदले, सर्वप्रथम मराठी साहित्य में आंबेडकरवादी साहित्य, आंबेडकरवादी विचार, आंबेडकरवादी आंदोलन, फुले-आंबेडकर सम्मेलन,

क्रांतिकारी सम्मेलन, आदि नामों से अभिहित करना पसंद कर रहे हैं। क्योंकि आंबेडकर के विचार बुद्धिवादी और तार्किक जीवन-दर्शन पर आधारित है। यह आंबेडकरवाद समग्र विश्व मानव जीवन को अपने बाहों में लेने वाले दर्शन और लोकतंत्र को माननेवाला है।

गौरतलब है कि हिन्दी और मराठी में दलित और गैरदलित जैसे विचार धाराएं जुड़ गई हैं और कालांतर में राजनीतिक चपेट में आकर आंबेडकर विचार विकृत हुए हैं। आंबेडकरवाद को स्पष्ट करते हुए डॉ. यशवंत मनोहर लिखते हैं- “आंबेडकरवादी और दलित आंदोलन में अंतर यह है कि, दलित हमें उच्च जाति के लोगों ने बनाया, हमें नीच रखने के लिए अगर हमें नीच नहीं रहना है तो हमें नीच रखने वाला शब्द ही त्यागना होगा। हमारा वर्णन क्रांतिकारी दर्शन से किया जाना चाहिए। आंबेडकरवाद क्रांतिकारी दर्शन है, इसलिए हमने अपने साहित्य को आंबेडकरवादी कहा।” (2)

बहुभाषी कवि दामोदर मोरे घोषित आंबेडकरवादी रचनाकार हैं और वे दलित-रचनाकार के बजाय आंबेडकरवादी रचनाकार घोषित करते हैं। आपके अधुनातन रचनाओं में दामोदर मोरे के विचारों के रेशे-रेशे में आंबेडकरवाद उमड़ा है। वर्तमान में हिन्दी-मराठी और अंग्रेजी साहित्य में आंबेडकरवादी विचारधारा को मजबूत किया है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर अक्सर कहा करते थे कि-इंजजसम जव उम पे उंजजमत वर् खल - दामोदर मोरे ने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए लिखा है कि- Battle is beauty, battle is our duty- एक जुझारू सिपाही की तरह लड़ते रहने का आह्वान करते हुए वे लिखते हैं-

मैं झुलस रहा हूँ
अपने आप में
जल रहा हूँ
गर तुम्हें ठंड लगती हो
तो आओ मेरे पास
लो मुझ से ऊर्जा
लेकिन
रोना दुःख से लड़ने का
कोई हथियार नहीं। (3)

आज भूमंडलीकरण का दौर है। हर चीज नई, हर विचार क्या हो रहा है। परंतु परंपरा का चोला पहने वर्णवादी

व्यवस्था, जाति, अपना चोला जरूर बदल रही है, परंतु वर्णवादी व्यवस्था जिस की तस बरकरार है। मराठी के प्रख्यात रचनाकार बाबुराव बागुल ने इस व्यवस्था के पोषक की ओर इशारा करते हुए लिखा है-

देवताओं, मंदिरों, ग्रहणियों का यह देश इसलिए क्या यह सब कुछ

अमर है- वर्ण अमर, जाति अमर, अस्पृश्यता अमर। युग के बाद, युग आए, बड़े-बड़े चक्रवर्ती आए, दार्शनिक आए फिर भी विषमता अमर है इससे

एक ही अर्थ निकलता है कि यह व्यवस्था बुद्धिजीवियों, संतों और राज

करने वालों को मंजूर थी। यानी इस व्यवस्था को बनाने और उसे बनाए

रखने में बुद्धिजीवियों और शासकों का हाथ है।

आजादी आई

स्वतंत्र की सुबह हुई

अंग्रेज गए..

खुशी की बौछार आयी।

मैंने गौर से अपनी गलियों में देखा

छाया हुआ था सब तरफ

आजादी का घना अंधेरा।(4)

दलित साहित्य और आंबेडकरवादी साहित्य में यही बुनियादी फर्क है कि दलित साहित्य से जो भाव निकल रहा है, उसमें वह लड़ाकूपन की कमी लग रही है। आंबेडकरवादी साहित्यकार समस्याओं से रूबरू होकर क्रांति चाहता है। दामोदर मोरे आंबेडकरवादी विचारों की मशाल लेकर बहुजन समाज का अंधेरा दूर करने के लिए निकल पड़े-

समंदर तू चिल्ला मत, मत कर शोर।

मैं धीरे-धीरे बढ़ रहा हूँ पूर्व की ओर।(5)

आंबेडकरवादी विचारों को कवि ने काव्य में ही व्याख्यायित किया है यथा-

बंजर और बेजान जमीन की

धड़कन का नाम है अंबेडकर

तीन-सदियों के दर्द की

रोशनी का नाम है अंबेडकर

मनुवाद को जलाने वाली

आग का नाम है अंबेडकर।(6)

मनुष्य होते हुए भी दलितों का एक तबका आज भी सदियों पुराना मैला सफाई का धंधा करने पर मजबूर है। वर्णाश्रम के चलते उनके खून में हीन मानसिकता घर कर गई है। इस मानसिकता को कौन दूर करेगा, इसके जिम्मेदार कौन हैं। इतना ही नहीं उन्हें अस्पृश्य के नाम पर कलंकित किया गया। जबकि सवर्ण महिला-पुरुष भी अपने बच्चों का मैला साफ करते हैं पर वे कलंकित नहीं हैं। इस भेद को कवि ने बखूबी स्पष्ट किया है यथा-

सवर्ण हो या अवर्ण महिला वेद हो या मनुस्मृति

शास्त्र हो या पुराण

किसी ने भी उसे

छूने से नहीं किया मना

हमें ही क्यों 'अछूत' कहा

किसकी दिमागी उपज से निकला

अस्पृश्यता का यह मैला।(7)

आंबेडकरवादी रचनाकार में संकीर्ण मानसिकता की कोई गुंजाइश नहीं होती है। वह सार्वभौम होता है। उसकी मानसिकता निष्कलंक, निष्कपट होती है। वह संसार को समता के आधार पर नापता है। वह हमेशा मनुष्य में विकास का हिमायती होता है। परंतु हमारे समाज में जाति का वह जहर इस भूमंडलीकरण के दौर में भी अपना फन बनाए रखा है। कवि व्याकुल है और इस जहर को दूर करने के लिए स्वयं बलिदान देने के लिए तैयार हो जाता है-

यह जातिवाद का जहरीला पानी

मैं

कब तक बहने दूँ

या

मैं ही बाँध बनकर

अपने आप को दफना दूँ।(8)

यह सर्वविदित है कि मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को जन्म नहीं देती बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना का निर्धारण करता है। क्योंकि सामाजिक अस्तित्व के कारण ही चेतना जागृत होती है। इसी ज्ञान से व्यक्ति भारतीय

समाज में व्याप्त विषमता, शोषण, अन्याय आदि कुरीतिपूर्ण विचारों को पहचान पाता है जो हिन्दुत्ववादी मानसिकता के छद्म कसौटियों यथा सत्य, शिव, सुंदर के आवरण में पनप रही है। कवि दामोदर मोरे इस षड्यंत्र से भली भांति परिचित है। इतना ही नहीं उनकी कविताएं सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि विसंगतियों पर प्रकाश डालती हैं। इस संदर्भ में डॉ. संताराम देशमुख की उक्ति बेहद सही लगती है कि- “दामोदर मोरे न केवल मराठी भाषा और महाराष्ट्र के ही श्रेष्ठ कवि व लेखक हैं, अपितु हिन्दी भाषा और हिन्दी प्रदेश के आंबेडकरवादी साहित्य, सांस्कृतिक संवेदना से संपन्न राष्ट्र के हैं” मोरे का यह प्रभाव इतना स्थायी और सर्वकालीन महत्व का है कि हमारी अगली पीढ़ियां भी उनके कृतित्व से निरंतर गौरवान्वित होती रहेंगी।” (9)

देश स्वतंत्र होकर 67 वर्ष हुए, आज भी बहुजन की स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। बजाय इसके जाति, धर्म की विषम मानसिकता गहरी ही हो गई है। ब्राह्मणों ने धार्मिक कृत्य के आधार पर शब्दों के अर्थ अपनी स्वार्थपूर्ति के अनुरूप सदियों पहले ढाल लिये थे वही आज भी चल रहा है, जिसके चलते बहुजन समाज का शोषण जारी है। कवि इस शब्दजाल के प्रति सचेत करते हुए लिखता है-

शब्दों,
कहाँ खो आए हो तुम अपना स्वरूप
कहाँ गिरवी रखे है तुमने अपने मानवतावादी अर्थ
क्यों करते हो तम वाचाल वीरों की भाटगिरी
लब्धियों की भंडागिरी। (10)

इक्कीसवीं सदी आधुनिक भारत के राष्ट्रपिता बाबा साहब डॉ. आंबेडकर का युग है। वे जीवन भर जातिभेद को दूर करने के लिए लड़ते रहे और बौद्ध धर्म में विजयी हुए। हैरानी यह है कि आज भी यह जातिभेद, वर्णभेद, शब्दों के आवरण बदलते हैं, रंग बदलते हैं, विषम समस्या जस की तस है। आज भी बहुजन दलित मानव अधिकार से वंचित किया जा रहा है, किसी प्रकार की सरकारी सुविधा उन्हें नसीब नहीं हुई है। संवैधानिक मूलभूत हक जो न्याय पर आधारित है उसका अर्थ किसी शासक को समझ नहीं आ रहा है। सचमुच यह देश पत्थरों का हो गया है। कवि मोरे ने लिखा है-

अन्याय हो जहाँ भी पिड़ उठेंगे

हम शब्द ही रह गये यह सिर्फ अर्थहीन शब्द।
रस निकाल कर फेंके हुए कोई की तरह
एक भी नहीं उगा, ना खौल उठा
किसी के प्रसरणशील खून में
क्योंकि अन्याय करने वाले भी
वही थे
जिन्होंने गले लगाया था पत्थर,
भगवान समझकर।
वही आज भी, पत्थर की कलाकृति पर
सिंदूर लगाते हुए
अंधविश्वास का सिंदूर कठिन बनता जा रहा है।
पत्थर की तरह
हाँ, तो यह देश
पत्थरों का ही है। (11)

इतिहासकारों ने, पुराणपंथियों ने, धर्मरचनाकारों ने मूल निवासी बहुजन दलित समाज को प्रताड़ित अवस्था में जीने के लिए मजबूर किया। उनके मूलभूत हक छीन कर गुलामों जैसी अवस्था पैदा की। अंग्रेज भारत में आकर सवर्ण को गुलाम बनाया, और बहुजन सवर्ण के गुलाम, यानी दलित बहुजन गुलामों के गुलाम, यह स्थिति आज भी नहीं बदली है। इसलिए कवि दामोदर मोरे ताकीद करते हुए आंबेडकरवादी संवेदना के प्रकाश में मंजिल को पाने को लिये अनवरत आगे बढ़ने का आवाहन करते हैं-

बहुत चलना है अभी भी
बनाने हैं रास्ते और मोड़
उजाले की उँगलियाँ पकड़ कर
तुम आगे-आगे बढ़ो
तुम्हारी राह रोकने की,
क्या हिम्मत है
इस औंधियारे में। (12)

निष्कर्ष

दामोदर मोरे की कविताएँ आंबेडकरवादी दृष्टि की सशक्त काव्यात्मक अभिव्यक्ति हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का निर्भीक उद्घाटन, जाति-वर्ण व्यवस्था की तीखी आलोचना तथा मनुवादी संरचनाओं के विरुद्ध स्पष्ट वैचारिक

प्रतिरोध दिखाई देता है। मोरे की कविता केवल पीड़ा का संवेदनात्मक चित्रण नहीं करती, बल्कि वह परिवर्तन की चेतना को सक्रिय करती है और संघर्ष को अनिवार्य ऐतिहासिक दायित्व के रूप में प्रस्तुत करती है।

उनकी काव्य-दृष्टि में 'आंबेडकर' एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व से आगे बढ़कर समता, स्वाभिमान और सामाजिक न्याय का जीवंत प्रतीक बन जाता है। कवि शब्दों की अर्थहीनता, धार्मिक पाखंड, इतिहास-निर्मित मिथकों और सत्ता-समर्थित अन्याय को प्रश्नांकित करता है। इस प्रकार उसकी कविता सामाजिक चेतना का पुनर्निर्माण करती है।

स्पष्ट है कि दामोदर मोरे का काव्य आंबेडकरवादी विचारधारा को केवल वैचारिक स्तर पर नहीं, बल्कि रचनात्मक और क्रांतिकारी स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। उनकी कविताएँ बहुजन समाज की आकांक्षाओं, संघर्षों और मुक्ति की दिशा को स्पष्ट करती हैं। अतः मोरे की काव्य-संवेदना हिंदी साहित्य में आंबेडकरवादी चिंतन की सुदृढ़ और सक्रिय उपस्थिति का प्रमाण है, जो समता-आधारित समाज-निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

संदर्भ :

1. मोरे, दामोदर, नीले शब्दों की छाया में, पृ. 4
2. कथादेश, मार्च-2008, पृ. 58
3. मोरे, दामोदर, पलकें सुलग रही हैं, पृ. 40
4. मोरे, दामोदर, नीले शब्दों की छाया में, पृ. 34
5. वही, पृ. 38
6. वही, पृ. 39
7. वही, पृ. 46
8. मोरे, दामोदर, सदियों के बहते जख्म, पृ. 103
9. पाठक, विनय कुमार, सिंह, इंद्र बहादुर सिंह, आंबेडकरवादी सौंदर्यशास्त्रीय यथार्थवाद और दामोदर मोरे की रचनाधर्मिता, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, पृ. 113
10. वही, पृ. 18
11. मोरे, दामोदर, पलकें सुलग रही हैं, पृ. 38
12. वही, पृ. 56

आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन के तत्वावधान में
बहुजन सांस्कृतिक मंच द्वारा संचालित





धम्म चर्चा

तथागत बुद्ध, डॉ. भीमराव आंबेडकर तथा समतावादी महापुरुषों के जीवन, विचार एवं मिशन पर केंद्रित लोककल्याण की नियमित वैचारिक चर्चा।


www.ambedkarvadisahitya.com

ambedkarvadisahitya@gmail.com

 Mob-9219937101, 8543901668